Vol.9 February'16 No.7
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

ईश्वर

–रामधारी सिंह 'दिनकर'

जिन्दगी न जन्म के साथ पैदा होती है,
न मृत्यु के साथ मरती है।
जन्म लेकर वह जिसे खोजती है,
मरकर भी उसी की तलाश करती है।
और ईश्वर आसानी से
हमारी पकड़ में नहीं आता।
उसकी कृपा यह है कि वह
हमें जन्म देता
और फिर मारता है।
जन्म और मरण,
दोनों खराद के चक्के हैं।
ईश्वर हमें तराश–तराश कर
सँवारता है।
और जब हम पूरी तरह सँवर जाते हैं,
ईश्वर अपने आपको हमें सौंप देता है।
सँवरी मूर्तियाँ केन्द्र से
अलग नहीं रहतीं।
ईश्वर या तो उनमें विलय होता है।
या उन्हें अपने में
लीन कर लेता है।

Brahmasha India Vedic Research Foundation acknowledges with thanks receipt of Rs. 500/- from Shri Chander Datt DA/99B, Hari Nagar, N.D.-64 Donations to the Foundation are eligible for Tax Exemption under section 80G of the Incom Tax Act 1960 vide No. DIT(E)1/3313/DELBE 21670-2503210 dated 25.03.2010.

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan February' 16 Vol. 9 No.7
माघ-फाल्गुन 2072 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. ईश्वर 2
-रामधारी सिंह 'दिनकर'
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 6
-डॉ. भारत भूषण
4. आचार्य चरक 7
-भारत भूषण विद्यालंकार
5. वीर सावरकर के जीवन का संक्षिप्त घटनाक्रम 8
6. सूर्य के स्वागत का पर्व-मकरसक्रांति11
-डॉ. मधु पोद्दार
7. खुशियाँ बाँटों दिल खोलकर 13
(मकरसक्रांति की पूर्व संध्या पर)
8. मनुस्मृति की समाजव्यवस्था में दलितों का सम्मान और अधिकार
-प्रो. सुरेन्द्र कुमार 15
9. वेदों में पशुहिंसा और गोमांस भक्षण का निषेध 19
10. क्यों मनाते हैं वैलेंटाइन डे 24
-शिव देव आर्य
11. फ्रांस में भारत की कीर्ति-पताका फहराने वाले 'वोल्तेर' 29
-प्रो. विष्णु दयाल (मोरिशस)
12. Law of Cause and Effect 34

संपादकीय

पर्यावरण प्रदूषण का कारण ग्रीन हाउस गैसें

पर्यावरण प्रदूषण का अधिकांश कारण ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन है। विश्व में विकास की दौड़ से पर्यावरण का विनाश हो रहा है। विकसित देश इसकी जिम्मेदारी विकासशील देशों पर डाल देते हैं। विश्व के सभी देशों के विकास के लिए विभिन्न प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वह ऊर्जा चाहे पेट्रोलियम से प्राप्त की जाए, लकड़ी या कोयले से प्राप्त की जाए अथवा जल से प्राप्त की जाए वे सभी पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। विश्व में सर्वत्र हम यातायात के साधनों का उपयोग करते हैं उनसे जिन गैसों का उत्सर्जन होता है वे हमारे वातावरण को इतना प्रदूषित कर देती हैं कि उसमें साँस लेना भी मुश्किल होता है और वे रोगों को निमन्त्रित करती हैं। इससे, अस्थमा, न्यूमोनिया, टी.बी. कैंसर आदि कितनी ही बीमारियाँ इस धरा पर रहने वाले प्राणियों को अपना शिकार बना रही हैं।

पर्यावरण की इस विषम स्थिति को ध्यान में रखते हुए दिल्ली में एक प्रयोग किया जा रहा है कि कैसे इस प्रदूषण को कम किया जाए। इसके लिए यातायात के साधनों को सीमित करने के लिए सड़कों पर एक दिन छोड़कर सम/विषम संख्या वाले वाहनों को प्रतिबंधित किया जा रहा है। इससे जहाँ एक ओर वाहनों के उत्सर्जन में कमी आएगी और दूसरी ओर सड़कों पर जाम भी नहीं लगेगा। देश में दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, बैंगलूरु, हैदराबाद, चैन्ने जैसे बड़े शहरों में मोटर साइकिलों, स्कूटरों, कारों, ट्रकों, रेलगाड़ियों और कल-कारखानों से इतना प्रदूषण हो रहा है कि मानव मात्र का जीवन संकट में पड़ गया है। आज लोग शहरों की घनी आबादी वाले क्षेत्रों से निकल कर बाहरी क्षेत्रों में बस रहे हैं ताकि वे ऑक्सीजन वाली वायु में साँस ले सकें। इन गैसों के उत्सर्जन से जलवायु ऋतु चक्र में परिवर्तन से ग्लोबल वार्मिंग, भूकंप, बाढ़,

अतिवृष्टि आदि की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। हाल ही के वर्षों में भारत में ही नहीं विश्व के जापान, अमेरिका, चीन, आस्ट्रेलिया आदि देशों में अतिवृष्टि, बाढ़ टोर्नेडो, भीषण तूफान, भयंकर हिमपात आदि प्राकृतिक आपदाएँ सामान्य बात हो गई हैं। वाशिंगटन विश्व-विद्यालय के वैज्ञानिक दल के नेता पीटर वार्ड ने अपने शोध में कहा कि यदि वातावरण में विषैली गैसों को छोड़ने और ऑक्सीजन को कम करने का क्रम इसी तरह जारी रहा तो पृथ्वी से शीघ्र ही 80 प्रतिशत जीवन नष्ट हो जाएगा। जैसे कि आज से लगभग 25 करोड़ वर्ष पूर्व पेरमियन युग में धरती की सभी प्रजातियाँ नष्ट हो गई थीं। आज भी वैसी स्थिति बन रही है। इसी प्रकार की रिपोर्ट यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया के शोधकर्ताओं ने प्रस्तुत की है।

वैज्ञानिकों के अनुसार जैसे-जैसे धरती का तापमान बढ़ेगा वैसे-वैसे पर्वतों के ग्लेशियरों के पिघलने की गति भी बढ़ेगी और जलवायु में असंतुलन पैदा होगा। इससे न तो समय पर वर्षा होगी न ठंड होगी और न गर्मी होगी। कुछ समय से ग्रीनलैंड में ग्लेशियर और आइसवर्ग टूट-टूट कर अटलांटिक में गिर रहे हैं। इधर हिमालय के ग्लेशियर भी पिघल रहे हैं। यह खतरे की घंटी है। विकास के इस मॉडल से मानव विनाश की ओर बढ़ रहा है। इस समय आवश्यकता संतुलित विकास की है। इस समय विकास की दौड़ में भारत समेत सभी देश वनोन्मूलन, औद्योगीकरण, विशाल बाँधों के निर्माण में लगे हैं। हम प्राकृतिक संसाधनों का इतना दोहन कर रहे हैं कि उससे हमारे अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम नई पीढ़ी को इसके प्रति जागरूक करें। इसके लिए स्कूलों के पाठ्यक्रमों में पर्यावरण को आवश्यक विषय के रूप में सम्मिलित किया जाए। सरकार, उद्योगपति, स्वंयसेवी संस्थाएँ सब मिलकर पर्यावरण की रक्षा के लिए कदम उठाएँ तभी देश का कल्याण होगा।

संपादक

सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-97)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

पूर्वोक्त अर्थ की पुष्टि के लिए सूत्रकार अगले सूत्र में एक अन्य हेतु प्रस्तुत करता है, सूत्र है-

शक्तितश्चेति।।97।।

अर्थ- (च) और (शक्तितः) शक्ति से (महत् आदि कार्य हैं)।

यहाँ शक्ति शब्द से तात्पर्य साधक और योग्यता दोनों हैं। महत् जीवात्मा के लिए विभिन्न भोगों को उपस्थित करने का मुख्य साधन अर्थात् करण है, जैसे- चक्षु आदि करण कार्य है, इसी प्रकार महत् भी कार्य है अथवा प्रत्येक कार्य अपने योग्य कारण से उत्पन्न होता है। तिलों से तेल प्राप्त होता है, रेत-बालू से नहीं। जैसे तिलों में तेल उत्पन्न करने की योग्यता है, इसी प्रकार त्रिगुणात्मक महत् सत्वरजसतमो रूप प्रकृति से उत्पन्न होता है। अतः वह कार्य है यह निश्चित होता है। सूत्र में 'इति' पद का कथन इस हेतु परम्परा की समाप्ति का सूचक है।

- जो वास्तव में योगाभ्यासी है उसे अपने में ही इतने दोष दिखाई देते हैं कि उन दोषों को जानने, दूर करने के लिए जो उपाय, प्रयत्न किए जाते हैं उन उपायों, प्रयत्नों का प्रयोग करते हुए अन्य दोष दर्शन का अवकाश ही नहीं मिलता।
- व्यक्ति को प्रायः अन्यों के दोष देखने और उन्हें दूसरों को बताने में सुख मिलता है तथा दोष देखते-देखते व्यक्ति का स्वभाव इतना बिगड़ जाता है कि वह केवल दोष ही देखना प्रारम्भ कर देता है। इससे उसकी आध्यात्मिक उन्नति रुक जाती है।

-पूज्य स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक

आचार्य चरक

आचार्य चरक महान् आयुर्वेदाचार्य थे। आप कुषाण सम्राट् कनिष्क प्रथम के राजवैद्य थे। कनिष्क प्रथम का काल सन् 200 का है। आपका जन्म शल्यक्रिया के जनक महर्षि सुश्रुत तथा व्याकरणाचार्य महर्षि पतञ्जलि से भी पूर्व हुआ थ। आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' है। इस ग्रन्थ का मूल पाठ वैद्य अग्निवेश ने लिखा था। चरक जी ने उसमें संशोधन कर तथा उसमें नए प्रकरण जोड़कर उसे अधिक उपयोगी एवं प्रभावशाली बनाया।

आपने आयुर्वेद के क्षेत्र में अनेक शोध किए तथा अनेक संशोधन आलेख लिखे, जो बाद में चरक संहिता नाम से प्रसिद्ध हुए। चरक संहिता मूलरूप में संस्कृत भाषा में लिखी गई थी। वर्तमान में उसका हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध होता है। आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी होने से इसे पाठ्यक्रम में भी स्थान दिया गया है। चरक संहिता के आठ भाग हैं (1) सूत्रस्थान, (2) निदानस्थान, (3) शरीरस्थान, (5) इन्द्रियस्थान, (6) चिकित्सास्थान, (7) कल्पस्थान एवं (8) सिद्धिस्थान। इन आठ विभागों में शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की बनावट, वनस्पतियों के गुण तथा परिचय आदि का वर्णन है।

महर्षि चरक की यह मान्यता थी कि एक चिकित्सक के लिए महज अकिंचन ज्ञानी या विद्वान् होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उसे दयालु और सदाचारी भी होना चाहिए। चिकित्सक बनने से पूर्व ली जानेवाली प्रतिज्ञाओं का उल्लेख चरक संहिता में मिलता है। वैदिक काल में इन प्रतिज्ञाओं का पालन करना सभी वैद्यों के लिए आवश्यक माना जाता था। चरक संहिता का अनुवाद अरबी तथा यूरोपीय भाषाओं में भी हो चुका है। उन-उन भाषाओं के विद्वानों ने इस ग्रन्थ पर टीकाएँ भी लिखी हैं। आयुर्वेद में महर्षि चरक के अभूतपूर्व योगदान के लिए ही आपको चिकित्सा विज्ञान के महान् सम्राट् की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

वीर सावरकर के जीवन का संक्षिप्त घटनाक्रम

जन्म (वैशाख कृष्ण 6, सं. 1940)	**28.05.1883**
प्रथम पद्य का प्रकाशन	1894
नासिक में विद्याध्ययन	1894-1901
कुल देवी दुर्गा के सामने सशस्त्र क्रान्ति की शपथ	1899
मित्र मेला ('अभिनव भारत') - की स्थापना	1900
विवाह	**1901**
पूना में महाविद्यालयीय अध्ययन	1902-1906
पूना में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार एवं होली	07.10.1905
लन्दन प्रस्थान	**9.06.1906**
लन्दन में 'फ्री इण्डिया सोसायटी' की स्थापना	1906
1857 के संग्राम को 'भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम घोषित कर इस पर पुस्तक लिखने का शुभारम्भ	10.05.1907
स्टुटगार्ड के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में फहराने हेतु- प्रथम तिरंगे का निर्माण	1907
'1857 का स्वातन्त्र्य समर" पुस्तक पर भारतीय पोस्ट ऑफिस एक्ट के आधार पर प्रतिबन्ध	**11.01.1109**
मदनलाल धींगरा द्वारा वर्जन वायली का लंदन में वध	01.07.1909
लंदन में बन्दी जीवन का प्रारंभ	**13.03.1910**
भाभी को ऐतिहासिक 'मृत्यु पत्र'	1910
जहाज से समुद्र में कूद कर कैद से बचने का प्रयास	08.07.1910
प्रथम आजीवन कारावास का प्रारम्भ	24.12.1910
द्वितीय आजीवन कारावास	30.01.1911
काले पानी की ओर	**27.06.1911**

बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा बी.ए. की डिग्री निरस्त 01.07.1911

अण्डमान की काल कोठरी में 04.07.1911

अण्डमान में परिवार से प्रथम मिलन 1919

ऐतिहासिक पत्र 'मरणोन्मुख शैय्या' से 1919

अण्डमान में परिवार से द्वितीय मिलन 1920

काले पानी से भारत की ओर प्रस्थान 02.05.1921

बाबा राव सावरकर की बन्दी जीवन से मुक्ति

'हिन्दुत्व' पुस्तक का प्रथम प्रकाशन 1923

जेल जीवन से मुक्ति-रत्नागिरि में स्थानबद्ध जीवन का प्रारंभ 06.01.1924

संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार से भेंट-वार्ता 1925

गाँधी जी से शुद्धि विषयक वार्ता 1927

भगत सिंह से गुप्त साक्षात्कार एवं '1857 का स्वातन्त्र्य समर' के पुनर्मुद्रण की स्वीकृति 1928

पतित पावन मन्दिर में हरिजनों के साथ प्रवेश22.02.1931

बंदी जीवन से पूर्ण मुक्ति 10.05.1937

हिन्दू महासभा के अध्यक्ष 30.12.1937 से 1942

नेताजी सुभाष से भेंट वार्ता 22.06.1940

नेहरु जी को असम समस्या पर करारा उत्तर 1941

'राजनीति का हिन्दूकरण एवं हिन्दुओं का सैनिकीकरण' महामन्त्र की घोषणा 1942

हिन्दू महासभा भवन, दिल्ली में 'अखण्ड भारत महासम्मेलन' 7 एवं 8.10.1944

'सत्यार्थप्रकाश' से प्रतिबन्ध हटवाने हेतु वायसराय से भेंट 27.11.1944

गाँधी हत्या काण्ड आरोप में लालकिले में बन्दी 05.02.1948

गाँधी हत्या काण्ड में निरपराध घोषित एवं मुक्ति	10.02.1949
इसी वर्ष कलकत्ता में हिन्दू महासभा अधिवेशन का उद्घाटन पू. बंगाल के अत्याचारों की भर्त्सना पर गिरफ्तारी	04.04.1950
'अभिनव भारत' समापन समारोह	10.05.1952
जन्मस्थान भगूर की यात्रा	11.05.1953
अमृत महोत्सव	8.05.1958
पूना विश्वविद्यालय द्वारा 'डॉक्टर ऑफ लेटर्स' पदवी से सम्मानित	08.10.1959
बम्बई विश्वविद्यालय से बी.ए., की डिग्री पुनः स्वीकृत	30.4.1960
मृत्युञ्जय समारोह	24.12.1960
'धर्म-पत्नी, 'माई' का देहावसान	08.11.1963
महाप्रयाण	**26.02.1966**

कष्ट ही तो वह प्रेरक शक्ति है जो मनुष्य को कसौटी पर परखती है और आगे बढ़ाती है।

–वीर सावरकर

काम की समाप्ति संतोषप्रद हो तो परिश्रम की थकान याद नहीं रहती।

–कालिदास

अत्याचार और अनाचार को सिर झुकाकर वे ही सहन करते हैं जिनमें नैतिकता और चरित्र का अभाव होता है।

–कमलापति त्रिपाठी

आकाश में उड़ने वाले पंछी को भी अपने घर की याद आती है।

–प्रेमचन्द्र

सूर्य के स्वागत का पर्व-मकर संक्रान्ति

-डॉ. मधु पोद्दार

सहस्रों वर्षों से भारत पर्वों व उत्सवों का देश रहा है। उत्सव वैदिक संस्कृति, सभ्यता, आध्यात्मिकता, एकता व भाईचारे के प्रतीक हैं। देश में पर्वों का जहाँ धार्मिक व सामाजिक महत्त्व है वहीं वैज्ञानिक महत्त्व भी है। विश्व के अन्य देशों में अधिकतर पर्व ईसाइयों व इस्लाम के पैगम्बरों के जीवन काल की मुख्य घटनाओं के आधार पर मनाये जाते हैं जबकि भारत में पृथ्वी, गाय व नदियों को माता का दर्जा एवं पर्वतों एवं ग्रहों को देवता का दर्जा देकर प्रकृति को पूर्ण सम्मान देने की प्रथा रही है। इसीलिए पूरे वर्ष ही उत्सव मनाये जाते हैं। होली, दीपावली, दशहरा, रक्षाबंधन जैसे धार्मिक व सामाजिक त्यौहार हों या मकरसंक्रान्ति, गौवर्धनपूजा व कुम्भ जैसे प्राकृतिक महत्त्व के सभी पर्वों का एक ही उद्देश्य है। प्रेम, एकता व भाईचारे का सन्देश चाहे इन त्यौहारों को मानने के तरीके अलग-अलग प्रदेशों में भिन्न ही हों।

मकर संक्रान्ति भारत का प्रमुख राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक, व प्राकृतिक त्यौहार है, जो हर वर्ष 14 जनवरी को मनाया जाता है। यह सूर्य भ्रमण से सम्बन्धित सूर्य उपासना का पर्व है। इस दिन सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रवेश कर मकरराशि में प्रवेश करता है इसीलिए इसे मकरसंक्रान्ति कहा जाता है। वास्तव में सूर्य एक वर्ष में 12 राशियों (मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन) में भ्रमण करता है व हर राशि में एक महीना रहता है। जब वह एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है तो उसे संक्रान्ति कहते हैं। संक्रान्ति का अर्थ है सम्यक् क्रान्ति अर्थात् उचित परिवर्तन यानि जो वर्षा ऋतु में 21 जून को कर्क राशि में प्रवेश कराता है तो दक्षिणायन शुरू हो जाता है। इस समय की उत्तर अयनान्त या समर

सालिस्टस कहते हैं। 21 दिसम्बर को सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध की अन्तिम सीमा मकर रेखा पर होता है जिसे दक्षिण अयनान्त या विन्टर सालिस्टस कहते हैं व शिशिर ऋतु में 14 जनवरी को सूर्य मकर राशि में प्रवेश कर जाता है तब उत्तरायण शुरू हो जाता है। 21 दिसम्बर को सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध से अधिकतर दूरी पर होता है, अतः उस दिन सबसे लम्बी रात व सबसे छोटा दिन होता है व उसके बाद सूर्य के मकर राशि में प्रवेश के साथ ही दिन लम्बे होने लगते हैं, ठंड कम होने लगती है। सूर्य के बढ़ते प्रकाश से खेत खलिहान भी पनपते हैं व नई फसलें भी तैयार होने लगती हैं। इसके अलावा पौराणिक व धार्मिक दृष्टिकोण से भी उत्तरायण में मृत्यु होने पर मोक्ष या स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसीलिए भीष्म पितामह ने अर्जुन के बाणों से घायल होने पर उत्तरायण में प्राण त्यागने की इच्छा व्यक्त की थी। प्राकृतिक व पौराणिक महत्त्व के अलावा मकर संक्रान्ति एक सामाजिक समरसता का भी प्रतीक हैं, यानि दो तत्वों व विचारों का मिलन। इसीलिए इस दिन खिचड़ी, गुड़ व तिल का सेवन महत्त्वपूर्ण हैं जो ऋतु परिवर्तन व शीत के दुष्प्रभाव से बचाते हैं।

मकरसक्रान्ति भारत के अनेक राज्यों में विभिन्न नामों से मनाई जाती है। जैसे पंजाब में लोहड़ी, बिहार में मकर संक्रान्ति, असम में भोगली बिहू, दक्षिण में पोंगल, उत्तरप्रदेश में तिल संक्रान्ति, मध्यप्रदेश में खिचड़ी संक्रान्ति, गुजरात व महाराष्ट्र में तिलागुड़, एवं उत्तराखंड में धुध लिया और पुसडिया। पर हर जगह इसका मुख्य उद्देश्य सूर्य उपासना ही है क्योंकि सूर्य ही ऊर्जा का स्रोत है जिसके बिना जीवन असम्भव है। सूर्य की किरणों से हमारा स्वास्थ्य व प्रकृति प्रभावित होती है अतः शीत की जड़ता को कम करके, स्वस्थ जीवन व अच्छी कृषि के लिए सूर्य उपासना की जाती है। यही इसका वैज्ञानिक आधार है।

खुशियाँ बाँटों दिल खोलकर

(मकर संक्रान्ति की पूर्व संध्या पर लोहड़ी)

दीवाली और होली के बाद उत्तर भारत में जो त्यौहार सबसे ज्यादा उल्लास और उत्साह से मनाए जाते हैं उनमें लोहड़ी प्रमुख है। अन्य त्यौहारों की तरह इसका रूप-स्वरूप अब बदल गया है, लेकिन इसकी धूम अभी कायम है।

लोहड़ी का नाम और यह पर्व क्यों मनाया जाता है, इस बारे में कई मान्यताएँ हैं लेकिन इसकी खुशियाँ और सामूहिक रूप से मनाए जाने पर कोई मतभेद नहीं है। लोहड़ी से कई दिन पहले ही लड़कों और लड़कियों की टोलियाँ घर-घर जाकर लोहड़ी माँगती हैं। कहा जाता है कि इन टोलियों को खाली हाथ भेजना शुभ नहीं होता। इसलिए कोई इन्हें पैसे देता है तो कोई तिल, लकड़ियाँ, फुल्ले (पॉपकॉर्न) मूँगफली या गुड़। सारा सामान इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर लोहड़ी की रात को अहाते में या घरों के बाहर लोहड़ी जलाई जाती है। तिल, गजक, गुड़, मूँगफली और फुल्ले पूजन के रूप में इस आग में डाले जाते हैं और फिर उन्हें आपस में बाँटा जाता है। इस आग के आसपास इकट्ठा होकर लोग भाँगड़ा और गिद्दा डालते हैं और एक-दूसरे को बधाई देते हैं। जिन घरों में शादी होती है या फिर बच्चा पैदा होता है, उनमें पहली लोहड़ी का उत्साह कई गुना होता है। आजकल लोहड़ी का रूप इस तरह बदल गया है कि बड़े शहरों में बच्चे लोहड़ी माँगने के लिए घरों से बाहर नहीं निकलते। हाँ, पंजाब के गाँवों में अब भी होली का यही सामूहिक रूप बरकरार है।

लोहड़ी पौष महीने के आखिरी दिन और मकर संक्रान्ति से एक दिन पहले मनाई जाती है। पंजाब में यह मान्यता है कि यह सर्दी के सीजन का आखिरी दिन है और इस रात आग सेंकने का मतलब होता है कि इस सीजन की आखिरी

आग सेंकी गई है। यह साल की सबसे लंबी रात भी मानी जाती है। इसके बाद रात छोटी होनी शुरू हो जाती है और दिन लंबे। वैसे, इस दिन पृथ्वी सूर्य के सबसे निकट होती है। सूर्य धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करता है। इसीलिए अगले दिन मकर संक्रान्ति मनाई जाती है। पंजाब में लोहड़ी से नए वित्तीय वर्ष की शुरुआत भी मानी जाती थी।

लोहड़ी के बारे में एक लोककथा भी मशहूर है। माना जाता है कि दूल्ला भाटी नाम के एक डाकू ने पंजाब में गरीबों और दुखी लोगों की बहुत मदद की थी। हालांकि वह खुद मुस्लिम था लेकिन हिन्दुओं की रक्षा करता था। वह अमीरों को लूटता था और वह राशि गरीबों में बाँट देता था। मिडल ईस्ट में बेचने के लिए भेजी जा रही लड़कियों को उसने बचाया और फिर उनकी शादी हिंदू लड़कों से कराई। लोहड़ी के लोकगीत में दूल्ला भाटी का गुणगान किया जाता है। वह जो सामान या राशि बाँटता था, उसे लोहड़ी कहा जाता था। कुछ लोग मानते हैं कि लोहड़ी शब्द लोई से निकला है। लोई संत कबीर की पत्नी का नाम था। कई लोग लोहड़ी को लोही भी कहते हैं। एक अन्य मान्यता है कि होलिका और लोहड़ी बहनें थीं। होलिका तो होली की आग में समा गई थीं लेकिन लोहड़ी जीवित रही थी। इस दिन तिल और रेवड़ी का विशेष महत्त्व है। लोहड़ी जलाने के बाद सभी लोग मिल कर खाना खाते हैं जिसमें सरसों का साग और मक्के की रोटी खास डिश होती हैं। लोहड़ी वह त्यौहार है जो लोगों को निकट लाता है ओर एक साथ खुश होने का मौका देता है।

मनुस्मृति की समाजव्यवस्था में दलितों का सम्मान और अधिकार

–प्रो. सुरेन्द्र कुमार

वर्तमान समय में, मनु और मनुस्मृति के प्रति सर्वाधिक आक्रोश उसमें वर्णित शूद्र–सम्बन्धी दृष्टिकोण को लेकर है। आलोचकों का कहना है कि मनु ने दलितों को असवर्ण, अछूत, नीच, दण्डनीय कहकर और उनको धार्मिक तथा शैक्षिक अधिकारों से वंचित कर उनके साथ घोर अन्याय किया और उन्हें पिछड़ा बना दिया।

उन आलोचकों से मैं कहना चाहूँगा कि उनके उक्त आरोप एकतरफा ओर निराधार हैं। यदि वे मनुस्मृति को मौलिकता की दृष्टि से पढ़ेंगे तो पायेंगे कि वे जो मनु के नाम पर कह रहे हैं, वह मनु ने वस्तुतः कहा ही नहीं है। वे कथन केवल प्रक्षिप्त श्लोकों पर आधारित हैं। हमारे द्वारा वर्णव्यस्था के मौलिक विवेचन से यह सिद्ध हो गया है। यहाँ बहुत ही संक्षेप में मैं शूद्र सम्बन्धी मन्तव्यों को प्रस्तुत करूँगा।

सबसे पहला प्रमुख तथ्य तो यह है कि मनु की वर्ण व्यवस्था वर्ण पर आधारित है। उन्होंने किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह आज की भाषा में दलित है अथवा पिछड़ा, जन्म के आधार पर शूद्र' कहा ही नहीं है। मनु का नाम लेकर आलोचकों ने, उन पर शूद्र शब्द थोपा है।

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य–इन तीन वर्णों की शिक्षा–दीक्षा प्राप्त कर लेते हैं, वे उस–उस वर्ण के कहलाते हैं और दूसरे विद्याजन्म के कारण 'द्विज' कहलाते हैं। जो उच्च वर्णों की तरह विधिवत् शिक्षा–दीक्षा नहीं प्राप्त करते या अशिक्षित होते हैं, वे 'शूद्र' कहलाते हैं। इन्हें केवल एक शरीर जन्म के कारण 'एकजाति' कहते हैं। बालिद्वीप में आज भी ये नाम प्रचलित हैं और वहाँ अस्पृश्यता का व्यवहार नहीं है। ऐसा व्यक्ति केवल शारीरिक कार्य कर सकता है, अतः 'शूद्र' का कार्य सेवाकार्य निर्धारित किया है। आज भी अशिक्षित या अल्पशिक्षित चतुर्थ या तृतीय क्षेणी कर्मचारी बनते हैं। उनका नाम सेवक, अर्दली, भृत्य, आदेशवाहक आदि हैं। शूद्र का भी

यही अर्थ है- **'श द्रवति'** अर्थात् जो स्वामी के आदेशानुसार कार्य निपटाता है, या **'शोच्यां स्थितिमापन्नः द्रवति'** अर्थात् जो निम्न स्थिति को पाने के कारण जो खिन्न रहता है, किन्तु शूद्र शब्द जन्मना जातिवाद के कारण निन्दित अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। मनु ने शूद्र को घरों में पाचन, सेवाकार्य आदि सौंपे है और उन्हें अतिथि के रूप में घर में आने पर भोजन कराने का विधान किया है। इससे भी बढ़कर दम्पती को आदेश है कि वे अपने भृत्यों (शूद्रों) को स्वयं खाने से पहले खाना खिलायें, फिर आप खायें (मनु. 1.91,3.196)।

यह कितना उच्च सम्मान और श्रेष्ठ व्यवहार का सूचक है। ऋषि दयानन्द ने भी मनु के अनुसार शूद्रों का पाचन कार्य वर्णित किया है (उपदेश मंजरी 10)। इस प्रकार मनु की व्यवस्था के अनुसार शूद्र कभी अस्पृश्य नहीं हो सकता। अस्पृश्य की मिथ्या कल्पना जातिवाद ने की है।

मनु के मतानुसार शूद्र सवर्ण एवं आर्य हैं। शूद्रों को चार आर्य वर्णों में परिगणित किया है (मनु.10.4)। 'वर्णापितम्....अनार्यम्" (मनु.10.57) से स्पष्ट संकेत हैं कि मनु वर्णों से बाह्य को अनार्य मानते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने मनु के इस मत को यथावत् स्वीकार कर शूद्रों को आर्य और सवर्ण माना है- **"धर्मसूत्रों की यह बात कि शूद्र अनार्य हैं, नहीं माननी चाहिए। यह सिद्धान्त मनु तथा कौटिल्य के विपरीत है"** शूद्रों की खोज, (पृ. 42) में कहा है कि **"दुर्भाग्य तो यह है कि लोगों के मन में यह धारणा घर कर गयी है कि शूद्र अनार्य थे। किन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि प्राचीन आर्य-साहित्य में इस सम्बन्ध में रंचमात्र भी कोई आधार प्राप्त नहीं होता।" शूद्र आर्य ही थे अर्थात् वे जीवन की आर्य-पद्धति में विश्वास रखते थे। शूद्रों को आर्य स्वीकार किया गया था और कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक में उन्हें आर्य कहा गया है, शूद्र आर्य समुदाय के अभिन्न जन्मजात और सम्मानित सदस्य थे।"**

(अम्बेडकर वाङ्मय, शूद्र और प्रतिक्रान्ति, पृ. 219, 322)। शूद्र दास भी नहीं थे क्योंकि उसको वेतन देने का विधान है

(मनु. 7.125-126.8.216)। नब्बे वर्ष से ऊपर के शूद्र को अशिक्षित होते हुए भी उच्च वर्णों द्वारा पहले सम्मान देने का आदेश है- **"मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः"** (2.219)। मनु ने **"न धर्मात् प्रतिषेधनम्"** (10.126) तथा शूद्र से धर्म सीखने का कथन करके यह स्पष्ट किया है कि शूद्रों को धर्मपालन का अधिकार था। (मनु. 2137)। ऋषि दयानन्द ने अनेक स्थलों पर **"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। शूदायचार्याय"** (यजुर्वेद 26.2) मंत्र को उद्धृत करके शूद्रों को सभी धार्मिक अधिकार प्रदान किये हैं। डॉ. अम्बेडकर ने भी वैदिक वर्णव्यवस्था में शूद्रों द्वारा वेदाध्ययन किया जाना स्वीकार किया है।

मनु की दण्ड व्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड का विध ाान है और ब्राह्मण तथा राजा को सर्वाधिक। क्योंकि शूद्र बुद्धिस्तर और समाजस्तर में निम्न है, अतः उसे दण्ड भी निम्न है। ब्राह्मण उच्च है, अन्तः दण्ड भी अधिक है-

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।
षोडशैष तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च।।
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिः तद्दोषगुणविद्धि सः।।

(मनु. 8.337-338)

अर्थात्-किसी चोरी आदि के अपराध में शूद्र को आठ गुणा दण्ड दिया जाता है तो वैश्य को सोलहगुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौंसठगुणा, अपितु उसे सौगुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड देना चाहिए, क्योंकि उत्तरोत्तर वर्ण के व्यक्ति के अपराध के गुण-दोषों और उनके परिणामों, प्रभावों आदि को भली भांति समझने वाले हैं।

इसके साथ ही मनु ने राजा को आदेश दिया है कि उक्त दण्ड से किसी को छूट नहीं दी जानी है। चाहे वह आचार्य, पुरोहित और राजा के पिता-माता ही क्यों न हों। राजा दण्ड दिये बिना मित्र को भी न छोड़े और कोई समृद्ध व्यक्ति शारीरिक दण्ड के बदले में विशाल धनराशि देकर छूटना चाहे तो भी उसे न छोड़े। (8.334-347)

जब वर्णव्यवस्था विकृत होकर जन्मना जाति-पांति में बदल गयी तब शिक्षा प्रदान करने के उत्तरदायी ब्राह्मण वर्ग ने दलितों का उपनयन संस्कार बंद करके उनको शिक्षा से वंचित कर दिया। शिक्षा से वंचित होने पर उन्हें 'शूद्र' घोषित कर दिया और फिर वे जातिवाद के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी शूद्र कहलाने लगे। धीरे-धीरे उनके साथ रोटी-बेटी के सम्बन्ध भी समाप्त होते गये और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। यह भारतीय समाज के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी।

कुछ लोग भ्रांतिवश इसकी जिम्मेदारी मनु पर थोप रहे हैं। विकृत व्यवस्थाओं का दोषी तो है परवर्ती समाज, किन्तु उसका अपमान रूप दण्ड मनु को दिया जा रहा है।

निष्कर्ष

मनुस्मृति के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में मैं यह कह सकता हूँ कि मनु स्वायम्भुव आदिकालीन राजर्षि हैं। मूलतः मनुस्मृति उन्हीं की रचना है। उसमें समय-समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं। वर्तमान मनुस्मृति में पाये जाने वाले परस्पर विरुद्ध, प्रसंगविरुद्ध, शैली विरुद्ध, वेदविरुद्ध श्लोक इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। आलोचक केवल आपत्तिजनक श्लोकों को ही उद्धृत करते हैं, मूल श्लोकों को उद्धृत नहीं करते और न यह बताते हैं कि उन्होंने दो विरोधी श्लोकों में एक आपत्तिजनक श्लोक को ही क्यों चुना? वस्तुतः वे प्रक्षिप्त श्लोक हैं। उन्हीं श्लोकों में जन्मना जातिवादी, शूद्रविरोधी और नारीविरोधी कथन पाये जाते हैं। वैदिक या मनु की वर्णव्यवस्था जन्मना जातिवाद पर आधारित नहीं है। जो लोग स्वयं को वैदिक या आर्य कहते हैं, उन्हें या तो जन्मना जातिवाद को नहीं मानना चाहिए अथवा स्वयं को वैदिक या आर्य कहना छोड़ देना चाहिए। हमें ऋषि दयानन्द के इस मार्मिक वाक्य को सदा स्मरण रखना चाहिए-

"देखो, जातिविभाग होकर हम निर्बल हो गये हैं।"

सर छोटूराम मार्ग, आर्यनगर,
झज्जर-124103 (हरियाणा)

वेदों में पशुहिंसा और गोमांस भक्षण का निषेध

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के सही अर्थ को न समझने के कारण यह गलत धारणा बना ली कि वेदों में गोमांस भक्षण का विधान है। वेदों में गाय के लिए 'अघ्न्या' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ 'न मारने योग्य'। सभी वेदों में इसका स्थान-स्थान पर उल्लेख है। गोहत्या को ऐसा निकृष्ट कार्य कहा है जिसके लिए मृत्युदंड का विधान था, देखिए-

यो अघ्नाया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।

ऋग् 10.67.16

अर्थात् जो गाय जैसे न मारे जाने योग्य पशुओं का दूध चुराता है अग्नि उसके सिर को काट दे। एक और अथर्ववेद का मंत्र देखिए-

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसौ अवीरहा।।

अथर्व. 1.164

यदि कोई अवध्य गाय की या घोड़े और मनुष्य की हत्या करता है और वह अपने इस पाप पूर्ण कार्य से बाज नहीं आता तो हम उसे सीसे की गोली से बींध देते हैं।

अघ्न्या इति गवां नाम, क एता हन्तुमर्हति

गौओं का नाम ही अघ्न्या है, इन्हें कौन मार सकता है? कुछ भारतीय विद्वानों ने अपने पाश्चात्य आकाओं का अंधानुकरण करते हुए कहा कि वेदों में गोमांस भक्षण का उल्लेख है। 'वैदिक एज' के लेखक मजूमदार ने (393 पृ. पर) लिखा है कि- "विवाह संस्कार के अवसर पर गौओं को मार कर उनके मांस से अतिथियों को तृप्त किया जाता था।"

इसी प्रकार 'ऋग्वैदिक इंडिया' के लेखक अविनाश चंद्र दास ने लिखा है कि –"वेदों में इस बात का साक्ष्य है कि प्राचीन आर्य गोमांस भक्षण करते थे। यज्ञ में बैल का पकाया हुआ मांस देवताओं को दिया जाता था, विशेषतः इन्द्र की इस मांस में विशेष रुचि थी।"

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभे कुक्षौ पृणन्ति में विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।। ऋग्. 10/86/17

इस मंत्र में उक्षा (सोम) या ऋषभक औषधि है। इसका अर्थ है– ऋत्विक् या वैद्य मुझ राजा इन्द्र के लिए (उक्ष्णः) सोम के (पञ्चदश) पंद्रह पत्तों को (पचन्ति) पकाते हैं और उसके द्वारा (विंशतिम्) 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों और 10 प्राणों को (साकं पचन्ति) मिलकर परिपुष्ट करते हैं।

ऐसा ही साक्ष्य बृहदारण्यक उपनिषद् का है जहाँ कहा गया है कि–
अथ य इच्छेत् पुत्रों मे पंडितो विगतिः समितिगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिताजायेत सर्वान् वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्षेण वार्षभेन वा। (बृहदारण्यकोपनिषद् 18.6.4)

"जिसकी इच्छा अपने पुत्र को विद्वान्, अच्छा वक्ता, वेदों का व्याख्याता और पूर्ण आयुष्य वाला बनाने की हो वह ओदन (चावल) के साथ उक्षी यानी ऋषभ (बैल) के मांस को पकाकर खाए।" हमारे अल्पबुद्धि पाश्चात्य विद्वानों के उच्छिष्टभोगी साम्यवादी पृष्ठभूमि वाले श्रीमती रोमिला थापर, सतीशचन्द्र आदि ने 'उक्षा' और 'ऋषभ' का अर्थ क्रमशः बैल और बछड़ा करके इसे गो मांस भक्षण का साक्ष्य मान लिया। वस्तुतः यहाँ उक्षा और ऋषभ(क) दो औषधियों के नाम हैं। इनका उल्लेख आयुर्वेद के ग्रंथ भाव प्रकाश में मिलता है।

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रि शिखरोद्भवौ।
जीवकः कूर्चकारः ऋषभो वृषश्रृंगवत्।।

अर्थात् जीवक और ऋषभक हिमालय के शिखर पर पैदा होती है। ऋषभक का आकार बैल के सींग की तरह का होता है। यह वीर्यवर्धक औषधि है। आयुर्वेद में औषधियों और फलों के गूदे को मांस कहा जाता है।

अज्ञानवश अर्थ न समझ पाने के बीसियों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जिससे वेदमंत्रों के अर्थों का अनर्थ हुआ है।

ऐसा ही कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद के 10.86.3 मंत्र में प्रयुक्त "अतिथिनीर्गाः" का अर्थ अतिथियों के लिए उपयुक्त गौएँ किया है। इसके द्वारा उन्होंने यह प्रतिपादित करना चाहा है कि प्रतिष्ठित अतिथियों के आने पर गौओं को मारकर उसके मांस में उन्हें तृप्त किया जाता था। अतिथियों को गाएँ देने के संदर्भ में 'गोध्न' शब्द उल्लेखनीय है। इसी प्रकार श्री कन्हैया लाल मुंशी ने अपनी पुस्तक 'लोपामुद्रा' में

कई विद्वानों ने 'मांसौदन पाचयित्वा' 'मांस और चावल पकाकर' किया है। वस्तुतः यहाँ प्रकरण के अनुसार 'मांस के बजाए 'माष' शब्द था जिसे कभी गलत लिखा गया तो वही चल पड़ा। अतः यहाँ 'माषौदनम्" होना चाहिए। दूसरे उक्षा और ऋषभ दोनों का ही अर्थ बैल है तो एकार्थक शब्द देने का भाव यह है कि शरीर में बलिष्ठ और ज्ञान से युक्त (ऋषभ-श्रेष्ठ) संतान प्राप्त करने के लिए घी मिश्रित चावल और उड़द का सेवन करें।

भाव प्रकाशनिघण्टु (हरितादि वर्ग, का श्लोक 125)

निम्नलिखित द्रष्टव्य है।

जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ।
मधुरौ पित्तदाहस्रकार्श्य वातक्षयापहौ।।

'अतिथिग्व' को सम्मानसूचक उपाधि माना है। जिसका अर्थ उन्होंने अतिथियों को गोमांस परोसने वाला किया है। 'अतिथिनीर्गाः' का सीधा सा अर्थ है 'अतिथिभ्यो नीयन्ते' जो अतिथियों के पास दानार्थ ले जाई जाएँ। इसमें मारने का भाव कहाँ से आ गया? जब कि वेदों में गौ के लिए 'अघ्न्या' और 'अदिति' आदि अहिंसावाचक शब्दों का प्रयोग हुआ है तो यह कैसे संभव है?

ऐसे ही 'अतिथिग्व' का अर्थ 'अतिथीन् प्रति सेवार्थं गच्छन्" अर्थात् सेवा के लिए 'अतिथियों के पास जाने वाली' है। पूर्वोक्त अतिथियों को गोमांस परोसने वाला अर्थ कल्पना की उड़ान है। इसका अर्थ मोनियर विलियम्स के संस्कृत-इंग्लिश कोश में भी To whom guest should go किया है। श्री कन्हैयालाल मुंशी ने न जाने यह अर्थ किस झोंक में कर दिया। उनके जैसे भारतीय संस्कृति के प्रशंसक द्वारा ऐसा अर्थ करना और भी निन्दनीय है। अब 'गोघ्न' शब्द पर विचार करें। 'गोघ्न' से सदा दूर रहने या उसे दूर रखने का आदेश है जैसे-

आरे तो गोघ्नमुत पूरुषघ्नम् (ऋग. 1.114.10)

अर्थात् जो गोघ्न (गौ की हत्या करने वाला) नीच पुरुष है वह तुमसे दूर रहे। पुरुष की हत्या करने वाला भी तुमसे दूर रहे। जब अतिथि के लिए 'गोघ्न' शब्द का प्रयोग पाया जाए तो इसका अभिप्राय होगा जिसके लिए गौ प्राप्त कराई जाए या दी जाए तथा जिसके लिए सदैव उत्तम, मधुर वाणी का प्रयोग किया जाए। 'गोघ्न' में प्रयुक्त 'हन्' धातु का अर्थ 'हिंसा गत्योः' में इसका गति अर्थात् ज्ञान, गमन, प्राप्ति विषयक अर्थ है। मुख्य भाव प्राप्ति का है अर्थात् जिसे उत्तम गाय प्राप्त कराई जाएँ।

यज्ञो में हिंसा – इसका अभिप्राय है यज्ञों में बलि के

रूप में प्राणियों की हिंसा।

वेदार्थ में अनभिज्ञ कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के अनुसार प्राचीन आर्य लोग यज्ञों में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गौओं और दूसरे पशुओं की हिंसा करते थे। परन्तु यह एकदम वास्तविकता से दूर कल्पना की उड़ान है। यास्क ने निघण्टु में, जो कि वैदिक शब्दों का व्याख्या कोश है, यज्ञ के पर्यायवाची 'अध्वर' की व्याख्या करते हुए लिखा है-

अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरति हिंसा कर्म तत्प्रतिषेधः। **(निरुक्त 1-7)**

अर्थात् जहाँ किसी प्रकार की हिंसा न हो। 'अध्वर' शब्द का प्रयोग चारों वेदों में शताधिक बार हुआ है। अतएव यह बात स्पष्ट है कि वेदों में पशुओं की बलि देने का विधान बिल्कुल नहीं है। बल्कि वे असंदिग्ध रूप से आदेश देते हैं कि केवल हिंसा रहित पवित्र आहुतियाँ ही परमेश्वर को स्वीकार है- मंत्र देखिए-

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति। (ऋ.1.1.4)

डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक Education in Ancient India में लिखा है कि वैदिक धर्म में पशुओं की बलि देने जैसे हिंसात्मक कार्यों का यज्ञ में कोई स्थान नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है-

न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेवामृतं दृष्ट्वां तृप्यन्ति। (1.116)

देवता लोगों को जो न तो मांस भक्षण करते हैं न सुरापान करते हैं उन्हें हिंसा से दूषित मांस आदि की बलि नहीं देनी चाहिए। वस्तुतः यज्ञ में त्याग का अर्थ आत्म बलिदान है। यदि पशु की बलि देनी ही हो तो हमारे अन्दर जो पाशविक वृत्तियाँ हैं, उनकी बलि देनी चाहिए। *क्रमशः*

क्यों मनाते है वैलेंटाइन डे?

-शिव देव आर्य

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा को समाज में तोड़ा जा रहा है जिसका कोई बखान नहीं कर सकता और यदि लेखनी भारतीयता की व्यथा को व्यक्त करने की कोशिश भी करें तो उसे चारों ओर से दबाने का प्रयास किया जाता है। अस्तु, ये लेखनी अपने कर्त्तव्य को कैसे भूल सकती है? ये तो अपने कर्म के प्रति सदैव कटिबद्ध रहती है। इसी लिए इसे ब्राह्मण की गौ कहा गया है अर्थात् ब्राह्मण की वाणी। ब्राह्मण को वेद सदैव आदेश देता है कि तू अपने कर्त्तव्य (जागृति) का विस्तार सदा करता रहे। जब-जब भी समाज में अन्धकार का वर्चस्व फैला है तब-तब लेखनी ने सूर्य के अद्वितीय प्रकाश के समान अन्धकार का दमन किया है।

आज भी कुछ यही हो रहा है। सभी को घोर अंधकार ने इस प्रकार घेर लिया है जैसे किसी व्यक्ति के पास अपनी श्रेष्ठ वस्तु है किन्तु वह दूसरे की तुच्छ वस्तु से इतना आकृष्ट हो जाता है कि अपनी श्रेष्ठ वस्तु को भुला देता है।

हमारे देश में ऋतुओं के अनुसार पर्व तथा उत्सव मनाने की अद्वितीय परम्परा है। वसन्त पंचमी, मकर संक्रान्ति, माघ पूर्णिमा, श्रावणी उपाकर्म, होलिकोत्सव, दीपोत्सव आदि अनेक पर्व इस देश में एक नवीन ऊर्जा का संचार करते हैं किन्तु दुर्भाग्य है इस भारतवर्ष की युवा पीढ़ी का जिसने अपने ऊर्जावान पर्वों को भुला दिया और पाश्चात्य पर्वों को मनाने की प्रथा शुरु कर दी। पाश्चात्य देशों में उन पर्वों को मनाने के पीछे कोई न कोई कारण जरूर रहा होगा, जिसकी वहाँ आवश्यकता होगी। किन्तु बिना किसी कारण को जाने हमारे भारतवासी भाई इन पर्वों को अपनी मन-मर्जी से मनाते हैं। मनाने के साथ-साथ कभी यह भी विचार नहीं करते कि हम जो ये पर्व मना रहे हैं, इसका उद्देश्य और लाभ क्या है?

वेलेंटाइन डे, फ्रैंडशिप डे आदि अनेक पाश्चात्य पर्वों को मनाने के लिए हम सदैव उद्यत रहते हैं किन्तु अपने पर्वों को मनाने के लिए जगाना पड़ता है, शोभायात्राएँ निकालनी पड़ती हैं, लोगों को भारतीय पर्वों की ओर आकृष्ट करने के लिए प्रलोभन दिये जाते हैं। फिर भी भारतीय पर्वों के प्रति निराशा भरा वातावरण चहुँ ओर दृष्टिगोचर होता है।

हाल ही में फरवरी मास में युवाओं को अपनी ओर सर्वाधिक आकृष्ट करने वाला पाश्चात्य सभ्यता का पर्व वैलेंटाइन डे आ रहा है। जिस पर्व के सत्यार्थ को न समझ लोग मौज-मस्ती में निमग्न हो सब कुछ गलत कर बैठते हैं। शादी-शुदा हुए बिना ही लोग भोग-विलासिता की सभी हदें पार कर देते हैं। आखिर क्या कारण है जो इस पर्व को मनाया जाता है? इसके पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है? क्योंकि पर्व मनाने के पीछे कोई न कोई उद्देश्य एवं कारण अवश्य होता है। इस वैलेंटाइन डे की भी बहुत लम्बी कहानी है।

सहृदय पाठको! आज से कई वर्षों पूर्व यूरोप की दशा वर्तमान यूरोप से बहुत निम्नस्तर की थी। यूरोप में पहले शादियाँ नहीं होती थीं। लोग रखैलों में विश्वास रखते थे। पूरे यूरोप भर में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिल सकता था जिसकी एक शादी हुई हो अथवा जिसका एक स्त्री के साथ सम्बन्ध रहा हो। ये परम्परा उनके यहाँ आज से ही प्रचलित नहीं है अपितु कई हजार वर्षों से यही होता चला आ रहा है। यूरोप के बड़े-बड़े लेखक, विचारक तथा दार्शनिक भी इन्हीं परम्पराओं से पले थे। वे भी ऐसे ही मौज-मस्ती भरे जीवन को जीना पसन्द करते थे। प्लूटो जैसा दार्शनिक का भी एक स्त्री से सम्बन्ध नहीं था प्रत्युत अनेक स्त्रियों से था। प्लूटो खुद इस बात को इस प्रकार लिखता है कि 'मेरा 20-22 स्त्रियों से

सम्बन्ध रहा है' अरस्तु, रुसो आदि पाश्चात्य दार्शनिक हैवानियत की सभी हदें पार करते हुए मातृतुल्य पूजनीय स्त्रियों के सन्दर्भ में एकमत होकर कहते हैं कि - 'स्त्री में तो आत्मा होती ही नहीं है। स्त्री तो मेज और कुर्सी के समान एक वस्तु है, जब पुरानी से मन भर जाये तो नयी ले लो।

ऐसी घृणित मान्यता को देख लोगों का पत्थर दिल भी विद्रोह कर उठता है। ऐसे अनेक यूरोपियन हुए जिन्होंने बीच-बीच में इस प्रचलन का विरोध किया। ऐसे ही विरोधियों में एक वैलेंटाइन नामक व्यक्ति भी था जिसने इस कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई। उसका कहना था कि हम लोग परस्पर जो शारीरिक सम्बन्ध रखते हैं, वह जानवरों की तरह का है, ये अच्छा व्यवहार नहीं है। इससे शारीरिक रोग होते हैं। इसका सुधार करो, एक पति एक पत्नी के साथ विवाह करके ही रहे। विवाह के बाद ही शारीरिक सम्बन्धों को स्थापित करें। ऐसी बातों को वैलेंटाइन ने घूम-घूम कर लोगों को बताया और लोग भी जागृत हुए। संयोगवश वे एक चर्च के पादरी बन गये। चर्च में आने वाले प्रत्येक नागरिक को ऐसी ही सलाह देने लगे तो लोग प्रायः पूछ लेते कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? अपनी परम्पराओं को क्यों तोड़ना चाहते हैं? दोषयुक्त होने पर भी अपनी संस्कृति तो अच्छी होती है। इसके उत्तर में वह कहते कि आज कल मैं भारतीय सभ्यता और दर्शन का अध्ययन कर रहा हूँ और मुझे लगता है कि भारतीय सभ्यता तथा भारतीय जीवन श्रेष्ठ है और इसे स्वीकार करने में कोई हानि भी नहीं है। इसलिए आप लोग मेरी बात स्वीकार करो। कुछ लोग उनकी उस बात को स्वीकार करते और कुछ लोग अस्वीकार कर देते। धीरे-धीरे वे चर्च में ही शादियाँ कराने लगे। सैकड़ों की संख्या में शादी होने लग गई तथा अनेक लोग इस घृणित कार्य से रुक गये। वैलेंटाइन के इस कार्य की चर्चा पूरे रोम में जगह-जगह होने लगी।

धीरे-धीरे यह बात रोम के राजा क्लौडियस तक भी पहुँच गयी। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने तुरन्त वैलेंटाइन को बुलाकर कहा कि- तुम ये क्या गलत काम कर रहे हो? तुम अधर्म क्यों फैला रहे हो? अपसंस्कृति को अपना रहे हो? हम बिना शादी के रहने वाले लोग हैं, मौज-मस्ती में डूबे रहने वाले लोगों को तुम बन्धन में बाँधना चाहते हो, ये सब गलत है। वेलेंटाइन ने कहा- महाराज! मुझे लगता है कि ये ठीक नहीं है। ये बोलते ही राजा ने एक न सुनी और तुरन्त ही उसे फाँसी की सजा सुना दी। क्लौडियस ने उन सब को बुलाया, जिनकी वैलेंटाइन ने शादी कराई थी।

14 फरवरी 498ई. को खुले मैदान में, सार्वजनिक रूप में वैलेंटाइन को फाँसी की सजा दे दी गई। जिन लोगों की वैलेंटाइन ने शादी कराई थी, वे लोग बहुत दुःखी हुए, इसी दुःख की याद में वैलेंटाइन डे मनाना शुरू हुआ।

आज ये वैलेंटाइन डे भारत में भी आ गया है पर यह अपने पूर्वरूप से बिल्कुल विपरीत है। जिस भारतवर्ष को वैलेंटाइन ने एक आदर्शवादी देश के रूप मे स्वीकार कर अपने देश को भी उसी प्रकार बनाने का विचार किया था। जिस देश में शादी होना एक सामान्य बात है, आज वहाँ बिना शादी के घूमना तो एक आमबात हो गई है। कहाँ हम आदर्शवादी थे और आज हम अपने देश को उसी गर्त में ले जाना चाह रहे हैं, जिस गर्त से वैलेंटाइन अपने देश को बचाना चाहता था।

भारतीय लोग पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण ही नहीं अपितु उसका अन्धानुकरण कर रहे हैं। वैलेंटाइन डे का यह दिवस बड़ा विचित्र है। जो दिवस उस पाश्चात्य महापुरुष के दुःख के रूप में स्वीकार किया जाता है। आज वही दिवस उसके सिद्धान्तों से सर्वथा विपरीत हो गया है और भारतवर्ष में अब शादी के पवित्र बन्धन को तोड़ने के लिए इस दिवस को

मनाया जाता है।

अब ये वैलेंटाइन डे हमारे स्कूलों, कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में आ गया है, बड़ी धूम-धाम के साथ इसे मनाया जा रहा है। लड़के-लड़कियाँ बिना कुछ सोचे-विचारे एक दूसरे को वैलेंटाइन डे का कार्ड दे रहे हैं और जो कार्ड होता है उसमें लिखा होता है कि, - "Would You Be My Valentine"? इसका मतलब किसी को मालूम नहीं और अन्धी दौड़ में बस भागते ही जाते हैं। वे समझते हैं कि हम जिस किसी से प्यार करते हैं उसको ये कार्ड दे रहे हैं, इसलिए इस कार्ड को वे सभी को दे देते। कोई उनको इस कार्ड में लिखे वाक्य का तात्पर्य भी नहीं समझाता।

इस कार्य को बढ़ावा देने के लिए टेलिविज़न चैनल इसका बहुत प्रचार तथा प्रसार करते हैं। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अपने काम धंधे को विस्तृत करने के लिए कार्ड, गिफ्ट, चॉकलेट आदि को दुगुनी अथवा तिगुनी रकम में बेचते हैं।

यदि किसी लड़की को गुलाब दिया जाये और वह लड़की उस गुलाब को स्वीकार कर ले तो वैलेंटाइन और न स्वीकार करे तो उसी क्षण उसके चेहरे पर तेजाब डाल दिया जाता है। ये कैसी परम्परा है? जिस कन्या को देवी के तुल्य सनझा जाता है, उसी देवी के साथ खिलवाड़ हो रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि नारी ने बहुत तरक्की की है, लेकिन यह भी सच है कि हमारे पुरुष प्रधान देश में आज भी नारी को दबाया जाता है। समय आ गया है कि हम नारी का सम्मान करें। क्योंकि कहा भी है- **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'।** आओ! हम सब मिलकर नारी का सम्मान करें। देश को पुनः विश्व गुरु बनाने का यत्न करें।

गुरुकुल-पौन्धा, देहरादून

फ्रांस में भारत की कीर्ति-पताका फहराने वाले 'वोल्तेर'

-प्रो. विष्णु दयाल (मोरिशस)

वोल्तेर नाटककार, इतिहासकार तथा उपन्यासकार थे। उनकी कविताएँ तथा इतिहास-सम्बन्धी पुस्तकें फ्रेंच साहित्य में उनके नाटकों, उपन्यासों तथा कहानियों से अधम कोटि की नहीं है। उन्होंने दस हजार से अधिक चिट्ठियाँ लिखी थीं। जो लोग साहित्य-प्रेमी हैं, वे वोल्तेर के किसी भी ग्रन्थ या चिट्ठी को पढ़कर फड़क उठते हैं। वोल्तेर समस्त फ्रेंच साहित्य के अग्रगण्य लेखक हैं।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को छोड़कर किसी भी श्रेष्ठ लेखक ने वोल्तेर की तरह अगणित पुस्तकें नहीं लिखी हैं। श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पाठक भी वोल्तेर के सब ग्रन्थों को पढ़ नहीं पाते।

वोल्तेर फ्रेंच भाषा के श्रेष्ठतम लेखक हैं। जब कोई शुद्ध भाषा लिखता है, उससे कहा जाता है कि आपने वोल्तेर की भाषा लिखी है।

वोल्तेर को कट्टरपंथी लोग कोसते हैं। जब सन् 1945 ई. में संसार-भर के बड़े-बड़े केन्द्रों में वोल्तेर की जयन्ती मनायी गयी थी, मॉरीशस के लोगों ने उनका नाम तक नहीं लिया। जिस देश में फ्रेंचभाषी हों, वहाँ ऐसे साहित्यकार के सम्बन्ध में ग्रन्थ तथा लेख प्रकाशित करके उस अवसर पर उनकी प्रशंसा करनी चाहिए थी। देश की इज्जत बचा कर एक हिन्दू ने एक पुस्तिका छापी जिसकी चर्चा बहुत दिनों तक हुई। परन्तु एक युग था, जब मॉरीशस के फ्रांसीसी लोग वोल्तेर का नाम अमर करना चाहते थे। फ्रेंच मॉरिशस में जो दूसरा चीनी का कारखाना बना तो उसका नाम 'फेरने' रखा गया। फ्राँस के फेरने नामक स्थान पर ही वोल्तेर रहते थे।

जब आज भी फ्रांस से अति दूरस्थ द्वीप में वोल्तेर के प्रति

रोष प्रकट किया जा रहा है, हम कैसे मानें कि उनके समकालीन लोग उनसे अप्रसन्न न हुए होंगे? "ऐस्से" नाम प्रचलित हो चुका था। उन्होंने "संसार की जातियों की प्रथाएँ" नाम का एक "ऐस्से" लिखा। बस, सब वर्ग के लोग रुष्ट हो गये। वोल्तेर-युग तक यूरोप अपने को बहुत बड़ा मान कर अन्य भूभागों का तिरस्कार करता था। इस ग्रन्थ ने बतलाया है कि एशिया अपनी लम्बाई-चौड़ाई के अनुकूल ही विचार के क्षेत्र में विशाल है। पादरी निराश हो उठे। वे संसार को बतलाते रहे कि हमारा धर्म सर्वोत्तम है। हम भारत और चीन को यह धर्म देकर सुधारेंगे। इस लेखक को निष्पक्ष होकर लिखते देखकर वे आग-बबूला हो गये। पाठकों की दृष्टि में यूरोप एक लघु महाद्वीप बन गया। इस ग्रन्थ की रचना के कारण वोल्तेर को निर्वासन मिला।

जिस युग में वोल्तेर रहते थे, वह पादरियों की नादिरशाही का युग था। वोल्तेर को अनेक बार जेल की यातनाएँ सहनी पड़ीं, विदेश में जाकर बसना पड़ा। यदि वोल्तेर चिकनी-चुपड़ी बातें करने में उस्ताद होते तो वे भारत के धर्मग्रन्थों की ईसाई धर्म-ग्रन्थ से तुलना करके यह कदापि न कहते कि भारतीय ज्ञान सभ्य लोगों का ज्ञान है।

वोल्तेर के ज़माने में अंगरेज़ भारत में पहुँच कर यहाँ के फ्रेंच लोगों को हटाना चाहते थे। दोनों जातियों में मुठ-भेड़ होती रहती थी। मॉरिशिस से जहाज और सैनिक भारत भेजे जाते थे।

फ्रांस में भारतीय ग्रन्थों का ज्ञान इंग्लैण्ड से पूर्व प्राप्त हुआ। उन ग्रन्थों को पाकर वोल्तेर आनन्द-विभोर होते थे। वोल्तेर उन इने-गिने पश्चिमी लेखकों में से हैं जिन्होंने इस बात को अठारहवीं सदी में ही स्वीकार किया कि प्राचीन काल में भारतीय सभ्य थे।

वोल्तेर का मत था कि भारत वह देश है, जहाँ पर सबसे

पहले मनुष्य पाये गये। वह समय मानव का हिंडोला है। संस्कृति सर्वप्रथम भारत में फैली। वहीं से संस्कृति एवं सभ्यता संसार-भर में फैली। भारत ने दर्शन, गणित, धर्म आदि का ज्ञान संसार को दिया। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता फ़िस्तेल दे कुलाँज ने वोल्तेर के मत को अपनाया।

वोल्तेर ने भारत का संक्षिप्त इतिहास लिखा है; क्योंकि जो यात्री तथा पादरी भारत की यात्रा करते थे, वे भारत के सम्बन्ध में निष्पक्ष होकर लेख नहीं लिखा करते थे। बेरन्ये जेसे यात्रियों ने भी भयंकर भूलें की थीं।

वोल्तेर ने कहा है कि लुटेरों के कुछ झुण्डों ने भारत की स्वतन्त्रता को छीना परन्तु कोई भारत के धर्म को समाप्त न कर सका। ब्राह्मण विद्वान् और गुणवान् हुआ करते थे। केवल वे ब्राह्मण पतित थे जो पश्चिमी लोगों के सम्पर्क में आए थे। हिन्दू लोग आश्चर्यचकित होते थे कि पादरी शराब पीते हैं और कुकृत्य करते हैं।

अपने भारत के इतिहास में वोल्तेर ने लिखा है कि केवल हम (डच, फ्रेंच तथा अंगरेज़) भारत में धन लूटने के लिए गए। यूनानी लोग तो ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही भारत की यात्रा करते थे। बंगाल के उस ज़माने के छोटे शहर विष्णुपुर का इतिहास लिखते हुए वे दर्शाते हैं कि वहाँ यूरोपीय जाति के आगमन के पूर्व स्वतन्त्रता विराजती थी और किसी का धन चुराया नहीं जाता था।

याद करने लायक बात यह है कि वोल्तेर उन प्रथम यूरोपीय लेखकों में हैं जिन्होंने मान लिया था कि केवल यूरोप के भीतर ही सभ्य आदमी नहीं रहते। वे उन लेखकों से सहमत नहीं थे कि भारतीय लोग जंगली हैं। जिस मिश्र से यूरोपवासियों ने बहुत कुछ सीखा, उसे भारत ने अपना शिष्य बनाया था। पराधीन भारत के बहुत कम प्रशंसक हुए हैं।

स्वतन्त्र होकर अब भारत इस बात को स्मरण करेगा और वोल्तेर का नाम आदर के साथ लेगा। भारत में एक देवी ने वोल्तेर की अलभ्य पुस्तिका का अंगरेज़ी में अनुवाद करके बहुत से लोगों को मानों बता दिया है कि उस उद्‌भुत लेखक की प्रतिभा का प्रखर प्रकाश दो सौ वर्ष से भी अधिक समय तक छाया रहा और अब भी छा रहा है।

राधाकृष्णन् अभिनन्दन ग्रन्थ, जो अभी हाल ही में अंगरेज़ी में प्रकाशित हुआ है, इस विषय पर प्रकाश डालता है कि मैक्समूलर के आ जाने पर भी अर्थात् भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद हो जाने पर भी लोग उन्नीसवीं सदी में भारत से इस तरह परिचित न थे, जिस तरह कि उससे पूर्व थे। वोल्तेर उन महान् लेखकों में से हैं जिन्होंने तरह-तरह की असुविधाओं के होने पर भी भारत का अठारहवीं सदी में ही सुन्दर चित्र खींच कर दुनिया को दिखाया।

मार्को पोलों के ग्रन्थ के सम्पादक आज स्वीकार करते हैं कि इटली के उस यात्री ने दुनियाँ को बता दिया था कि भारतीय सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से वास्तव में उच्चतर थी। अपने युग में वोल्तेर ने इसी सत्य को प्रकट किया था कि भारतीय सभ्यता संसार की सभ्यता के इतिहास में अग्रगण्य है। वर्तमान काल में "अमेरिकन सेंचुरी" नाम वाली पत्रिका लिखती है- "पाश्चात्य सभ्यता प्राच्य आध्यात्मिक शौर्य की देह पर छूकर चकनाचूर हो गई।"

वोल्तेर जनक प्रभृति लोगों को राज्य करते देखना चाहते थे। जनक का नाम उन्होंने सुना न था। सुना होता, तो वे खुश होकर कहते कि सबसे ज्यादा सुख पैदा करने वाली घटना रामायण काल में घटी है। वे कहा करते थे सुख तब होगा जब राजा लोग तत्त्ववेत्ता होंगे। अठारहवीं सदी में फ्रांस के लेखक और विचारक जनता की प्रगति और सुख की समस्याओं पर विचार किया करते थे। यह समझ कर कि

मध्य युग मानव दुःखों का स्रोत था, वोल्तेर ऐसे युग का पुनरावर्तन ले आने के इच्छुक न थे।

वोल्तेर एक कर्मण्य पुरुष थे। वे अन्याय होते देखकर चैन से बैठने वाले विचारक एवं लेखक न थे। कालास नाम के यूरोपीय को प्राणदण्ड दिया गया। ज्यों ही वोल्तेर को प्रतीत हुआ कि न्याय नहीं किया गया, उन्होंने एक आंदोलन खड़ा किया। अन्ततः वोल्तेर विजयी हुए। इस विजय को स्मरण करके जून 1953 में मॉरीशस के सुप्रसिद्ध फ्रेंच लेखक ने लिखा है कि रोज़न्बर्ग दम्पत्ती के साथ जो हुआ, वही कालास के साथ हुआ था। कदाचित् एक दिन रोज़न्बर्ग के दो बच्चों को कहा जाय कि तुम्हारे माता-पिता निर्दोष थे, अतः यह थैली पकड़ो जो पैसे से भरपूर है। वोल्तेर का पदानुसरण करने के लिए आज भी श्रेष्ठ लेखक उद्यत हैं।

वोल्तेर के ढंग के पहले लेखक राबेले हुए हैं जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी में हास्यरस से पूर्ण पुस्तकें लिखीं। उन्होंने शेख-चिल्ली की कहानी पश्चिम को प्रथम बार सुनाई। राबेले की तरह मोंताई वोल्तेर से पूर्व आये। इन्होंने यूरोप में लोगों को छोटे-छोटे लेख अर्थात् निबन्ध लिखना सिखाया था। निबन्ध के लिए जो "ऐस्से" शब्द व्यवहृत किया जाता है, वह उनके युग से ही प्रचलित हुआ। कहानी लेखकों से छोटे और बड़े बहुत प्रसन्न थे। जिफ्रेनी नाम के लेखक भारतीय कहानियाँ आदि लिख कर प्रिय बने। लेखकों की कहानियों में उत्तम विचारों का अभाव था। इस न्यूनता को दूर किया वोल्तेर ने। उन्होंने दार्शनिक कहानियाँ लिखीं। "एक श्रेष्ठ ब्राह्मण की कहानी" नाम से उन्होंने कहानी लिखी। इसमें तथा अन्य कहानियों में उन्होंने दार्शनिक विचार भर दिये। वोल्तेर के बाद महाकवि विक्टर ह्यूगो आये। इन्हें उन्नीसवीं शताब्दी के वोल्तेर नाम से याद किया जाता है। इनकी जयन्ती अनेक बड़े-बड़े केन्द्रों में मनाई जाती है।

LAW OF CAUSE AND EFFECT

The basis for the laws of the nature and that of the Law of Karma is same, namely the Law of Causation. We all have implicit faith in the Law of Causation. There has to be a cause before every effect. Once we see it raining we are sure of the existence of the clouds. Though through the window I can see only the rains and not the clouds yet I am 100% sure about the existence of clouds too from seeing the rains. This is an event within the purview of the law of the nature. This relationship between the clouds and rains was seen several times by the human beings and then they were able to relate them in an inviolable manner. Now we can state with utmost certainly that if there is rains then there must be clouds up in the sky. The relationship is seen to be related by us, but is not caused by us. It is caused by God. We human beings are sure about its inviolability because we are certain about the inviolability of the laws that emanate from God. So is true with the Law of Karma that originates from Him.

The rains and clouds are purely related to the phenomena taking place in the material world. Let us discuss something closer to us. Suppose I begin to have an uneasy sensation in my abdomen. It causes pain to me. Soon I may want to visit a physician and he is likely to diagnose what could have gone wrong in my body system that too is made of matter. With his experience (that come from his knownledge of the cause and effect relationship between the foodstuffs and the painful sensations) he may be able to say that I might have eaten bad foodstuff that has led to the problem. This event can be seen from two perspectives. First, it can be seen as the law of the nature playing its role. Second, it can be seen as the Law of Karma playing its role. That is to say, when the particular Karma (the act of eating the particular substance) then the Law of Karma rewarded him with the pain in his abdomen. Since the origin of both the laws is same agency, the difference is in the semantics only. Both the laws (the law of the nature and the Law of Karma) find their applicability in the present case because the system of interest is the gross body of a human being-while the gross body is a material system only yet it is inhabited by a conscious soul who decided to eat a particular thing out of the freedom enjoyed by it.

It's easy to see that what we eat, drink and inhale would affect our gross body according to the chemistry of the laws of the nature. Also, the act of intake happens to be Karma, and therefore, the effects can be seen as due to the Law of Karma. Likewise, we can see the effects of whatever we do to our subtle body. The difference is that it becomes more apt to characterize them according to the Law of Karma rather than the laws of the nature because the subtle body consists of minute particles. For example, I have paid a bribe to public servant to obtain an out of turn favour. The act of paying a bribe does not seem to affect the body chemistry of mine or that of the public servant in a gross manner that we can easily capture in a laboratory. Thus, it's better to analyze the act as Karma-it's a cause. Its subsequent effects are to be seen as according to the Law of Karma.

The subtle body is made of matter though of minutest sub atomic particles. When I pay a bribe of this nature I have definitely gone through as elaborate decision making process. I consciously developed the strategy to which the Karma of paying the bribe is an integral part. The intellect and memory actively participated in the decision making pr ocess. The decision making process itself gets stored in the memory actively participated in the decision making process. The decision making process itself gets stored in the memory. This is as if I have programmed my subtle body in so far as the particular external scenario is concerned that refers to the context and my desire to obtain the out-of-turn favour. The programming of the subtle body could also be characterized as the conditioning of the Mind. Once the Karma is executed whether at the level of intention, speech or an act, the subtle body goes through the associated processes. That programming (or, conditioning of the Mind) is definitely the effect of the Karma and associated decision making process, and thus, can be considered as the effects thereof. These effects can be seen as the ones according to the Law of Karma or the law of the nature that is applicable to the changes taking place in the subtle body that causes its programming/conditioning. This again is a matter of semantics only. But it can be appreciated that when the cause and effect pertain to the subtle body then we are more in the realm of the Law of Karma than in the laws of the nature. Thus, there can be three levels of causes and effect behaviour in the world.

1. The events that are seen in the nature such as the rains from the clouds can be described according to the laws of the nature. These pertain to the material part of the world.
2. The events taking place in our gross body, say after I have consumed something by way of eating, drinking and inhaling. The effects thereof can be viewed as that due to the laws of the nature because they analyze the effects of the material substances on the gross body that too is made of matter. Alternatively, the sequence of events can be described in accordance with the Law of Karma because consumption of the substances can be viewed as Karma-there is a conscious being that consciously performed that Karma. Naturally, the person's subtle body (Mind) played its role too.
3. The events where no gross material transfer by way of chemistry takes place, such as my paying a bribe to a public servant. This is an exclusive territory of the Law of Karma.

The above shows the continuity prevalent in the world. While the events in the Level I are in the exclusive zone of the laws of the nature, the events in Level 3 are in that of Law of Karma. The events in Level 2 can be described either way, or better to say, both the laws are playing their roles. If I eat a poisonous substance with the intention of committing suicide (supposing that it was an unsuccessful attempt!) them two things are required to be analyzed : a) the nature of the poisonous substance and its effects on the body chemistry where the laws of the nature are applicable, and b) what mind frame made me make this attempt where the phychology of my thought process will play a major role inviting the applicability of the Law of Karma.

Date of Pubn. : 31.01.2016 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 Feb. 2016
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2014-2016

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं,
जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्।। ।।यजु. 36/24।।

ऋषि–दध्यङ्ङाथर्वणः, देवता–सूर्यः, छन्द–त्रिष्टुप्

अर्थ–(तत्) वह शुद्ध, पवित्र देवहितकारी (चक्षुः) सर्वद्रष्टा परमात्मा (पुरस्तात्) सबका आदि प्रथम कारण है (उच्चरत्) उत्तमता से विद्यमान् है। उसी की कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें, जीएँ, सुनें, बोलें और किसी के पराधीन न हों। अर्थात् ब्रह्मज्ञान, बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रियाँ तथा शरीर सब स्वस्थ रहें। हमारा कोई अंग निर्बल तथा रोगी न हो। आपकी कृपा से हम सौ वर्ष से अधिक भी जीएँ, देखें, सुने, बोलें और स्वाधीन रहें।

Oh Almightly God, the Seer of all, the Donor of happiness to the learned men exists in his Beatific State even before the creation of universe. By His Grace may we see, hear, speak for hundred years, may we remain free from dependence on others for hundred years and again may we remain without dependence even beyond hundred years.

Printed by:- Friendsprintofast, New Delhi-58